AIJRRLSJM VOLUME 8, ISSUE 2 (2023, FEB) (ISSN-2455-6602)ONLINE
Anveshana's International Journal of Research in Regional Studies, Law, Social Sciences, Journalism and Management Practices

भारतीय संविधान की प्रस्तावना तथा पिछड़ा वर्ग

सुमन देवी[1] डॉ. सीमा रानी[1]
[1]शोधार्थी [2]शोध निर्देशक
विभाग:- लोक प्रशासन
ओ. पी. जे. एस. विश्वविद्यालय
ईमेल आईडी:- 22sumanchahal@gmail.com

सारांश:

भारतीय संविधान की प्रस्तावना एक मार्गदर्शक प्रकाश और एक मूलभूत दस्तावेज के रूप में कार्य करती है जो भारतीय राष्ट्र की आकांक्षाओं और मूल्यों को दर्शाती है। यह उन मूल सिद्धांतों और उद्देश्यों को समाहित करता है जो भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली की आधारशिला बनाते हैं। प्रस्तावना में निहित प्रमुख सिद्धांतों में से एक सामाजिक न्याय हासिल करने और हाशिए पर और वंचित समुदायों के सशक्तिकरण सहित सभी नागरिकों के लिए समानता सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता है। यह सार भारतीय संविधान की प्रस्तावना और पिछड़े वर्गों के मुद्दे के बीच संबंध पर केंद्रित है, जो ऐतिहासिक रूप से भेदभाव और प्रतिकूल परिस्थितियों के अधीन सामाजिक समूहों को संदर्भित करता है। प्रस्तावना का सार एक न्यायपूर्ण, समावेशी और समतावादी समाज की स्थापना में निहित है, और यह भारतीय संविधान की परिवर्तनकारी दृष्टि के लिए मंच तैयार करता है।

पिछड़े वर्गों की अवधारणा ने भारतीय संविधान के निर्माण के दौरान महत्वपूर्ण ध्यान आकर्षित किया, जिससे ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने और सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के लिए आरक्षण और सकारात्मक कार्रवाई जैसे प्रावधानों को शामिल किया गया। संविधान पिछड़े वर्गों, जिन्हें अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के रूप में जाना जाता है, के लिए शैक्षिक संस्थानों, सार्वजनिक रोजगार और विधायी निकायों में सीटों के आरक्षण का प्रावधान करता है। इन सकारात्मक कार्रवाइयों का उद्देश्य ऐतिहासिक नुकसान को सुधारना और इन समुदायों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को ऊपर उठाना है।

विषय संकेत: प्रस्तावना, भारतीय संविधान, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, आरक्षण, सकारात्मक कार्रवाई, सामाजिक न्याय, समावेशी लोकतंत्र।

परिचय

प्रायः प्रत्येक अधिनियम के प्रारम्भ में एक "प्रस्तावना" की व्यवस्था होती है। प्रस्तावना में उन उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता है जिनकी प्राप्ति के लिए कोई अधिनियम पारित किया जाता है। न्यायाधिपति श्री सुब्बाराव के शब्दों में "प्रस्तावना किसी अधिनियम के मुख्य आदर्शों एवं आकांक्षाओं का उल्लेख

करती है"। (देखिए गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर., 1967, पृष्ठ 1643), इस महत्वपूर्ण निर्णय में मुख्य न्यायाधिपति श्री सुब्बाराव ने न्यायाधिपति शाह सिकरी, सेलट एवं वैद्य निगम न्यायाधिपतियों की तरफ से निर्णय दिया कि कंडिका 15 में भारतीय संविधान की प्रस्तावना के संबंध में निम्न शब्दों में व्याख्या की है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संविधान की रचना का मुख्य उद्देश्य निहित है। "प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के विचारों को जानने की कुंजी है। देखिए इनरी वेरीवारी युनियन ए.आई.आर 1960 जु. को. 945), संविधान की रचना के समय निर्माताओं का क्या उद्देश्य था, किन उच्चादशों की प्रतिस्थापना भारत के संविधान में करना चाहते थे, इन सबको जानने का माध्यम प्रस्तावना होती हैं. "भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जो उद्देश्य समाविष्ट किए गये हैं वे इस प्रकार हैः-

"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोक तंत्रात्मक धर्म निरपेक्ष, समाजवादी गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. को एतद्वारा संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है"।

उच्चतम न्यायालय ने बेरुवारी के मामले में यह मत व्यक्त किया था कि प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है। लेकिन केरवा नन्द भारतीय बनाम केरल राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने बैरू बारी के मामले में दिए गए अपने निर्णय को बदल दिया है और वह इनमें निर्धारित किया है कि प्रस्तावना संविधान का अंग है। उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि प्रस्तावना संविधान का भाग है और उसे संविधान के अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संशोधित नहीं किया जा सकता है। (देखिए ए.आई. आर. 1973 सु.को. पृष्ठ 1461 व "केशवानन्द बनाम केरल राज्य") उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य" के प्रकरण में बहुमत द्वारा यह स्पष्ट निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 के द्वारा भारतीय संसद को संविधान के मूल ढाँचे को परिवर्तित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इस निर्णय द्वारा गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य" के मुकदने में प्रतिपादित सिद्धांत को रद्द कर दिया गया है।

भारतीय संविधान का उद्देश्य

न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता

भारतीय संविधान द्वारा देशवासियों को न्याय प्रदान करने का प्रयास किया गया है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय का मुख्य लक्ष्य व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित के बीच सामंजस्य स्थापित

करता है। हमारे संविधान निर्माताओं के समक्ष भारत एक "कल्याणकारी राज्य: कल्याणकारी राज्य की स्थापना का उद्देश्य था। वे भारत में एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना चाहते थे जिसका उद्देश्य है बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ।

भारतीय संविधान का मुख्य उद्देश्य भारतीय जनता को निम्नलिखित अधिकार प्रदान कराना हैं:–

क) न्याय सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिका

(ख) स्वतंत्रता: पद एवं अवसर।

(ग) धुत्त व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता के लिए।

जाति रहित तथा समतावादी समाज स्थापित करने और विशेषकर मताधिकार प्रदान करने की संवैधानिक वचनबद्ध व्यवस्था ने हिन्दू समाज में शताब्दियों से चली आ रही जाति प्रथा को सबसे बड़ी चुनौती दी है। जाति, वंश, मूल, लिंग एवं धर्म से परे समतावादी समाज की स्थापना करना भारतीय संविधान की प्रमुख व्यवस्था है। परन्तु समतावादी सिद्धांत, भारत की जातिगत सामाजिक व्यवस्था में अचानक उभर कर सभी के समक्ष नहीं आया है। परम्परागत असमानता पर आधारित व्यवस्था के परिवर्तन को परिवर्तित करने हेतु अनवरत प्रयास चलते रहे हैं।

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत पर हिन्दू समाज में उत्तराधिकार के रूप में जो असमानता पाई जाती है, उसको बदलने के लिये समाज सुधारको धार्मिक विचारकों, राष्ट्रीय नेताओं एवं देश के बुद्धिजीवियों द्वारा अनवरत रूप से प्रयास किये जाने का परिणाम भारतीय संविधान में समानता के सिद्धांत का प्रतिपादन है।

बोद्ध धर्म, जैन धर्म, सिक्ख धर्म तथा वैष्णव धर्म ने हिन्दू धर्म ग्रंथों द्वारा प्रतिपादित सामाजिक असमानता के सिद्धांत के औचित्य हो चुनौती दी है तथा समानता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

ब्रह्म समाज, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन द्वारा चलाए गए समाज सुधार के आन्दोलन ने मानव की समानता के सिद्धांत को जन्म दिया और प्रचारित किया। कबीर एवं रैदास द्वारा भक्ति आन्दोलन ने भी भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था में निम्न श्रेणी में सम्मिलित जातियों को आत्म सम्मान एवं सामाजिक बराबरी के सिद्धांत का ज्ञान कराया। हिन्दू धर्म द्वारा मान्यता प्राप्त सामाजिक असमानता को व्यवस्थित ढंग से चुनौती दी गई है व सामाजिक परिवर्तन लाने का अनवरत प्रयास किया गया है।

महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, तथा डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जैसे विचारक रूसो और जे. एस. गिल के समानता एवं समतावाद के सिद्धांत से प्रभावित थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के कट्टरवादिता के सिद्धांत को अमान्य कर दिया। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में समानता के सिद्धांत का प्रचार सशक्त ढंग से किया। महात्मा गांधी द्वारा अछूतों के लिये किये गये कार्य और अस्पृश्यता निवारण का संकल्प "हिन्दू सुधारवाद तथा पाश्चात्य समतावाद का अद्‌भुत मिश्रण है।

डॉ. अम्बेडकर ने 'सामाजिक असमानता को भगवान द्वारा निर्मित" सिद्धांत की खुलकर आलोचना की और इसको मनुष्य द्वारा निर्मित की गई उच्च वर्गों के लाभों के लिये छल कपट पूर्ण सुनियोजित नीति निरूपित किया।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के अथक एवं अनवरत प्रयास, शोषित, दलित एवं पिछड़े वर्गों के हितों की पैरवी का परिणाम ही है कि भारत के संविधान के निर्माताओं ने "हितकर भेदभाव मुआवजा भेदभाव की नीति व सिद्धांत को संविधान में प्रतिपादित करना स्वीकार कर लिया।

बुद्धिवादिता समानता एवं स्वतंत्रता के सिद्धातों का प्रभाव यह हुआ कि भारत की शोषित, दलित व पिछड़ी जातियों, मनुष्य निर्मित सामाजिक असमानता के विरुद्ध आवाज उठाने लगी तथा संगठित होकर अपने अधिकारों की मांग करना प्रारंभ कर दिया। दक्षिण भारत में दलित वर्ग एवं पिछड़े वर्गों ने राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में ब्राह्मणों में वर्चस्व के विरुद्ध आवाज उठाई।

परिणामस्वरूप उन्होंने शासकीय नौकरियों में कोटा व आरक्षण प्राप्त करने में सफलता हासिल कर ली। वर्तमान समय में "पुरोहितवाद का सिद्धांत एवं "धर्म निरपेक्षता और समतावादा का सिद्धांत दोनों साथ-साथ चल रहे है। भारतीय संविधान में यद्यपि वंशानुगत असमानता को रद्द कर दिया है और वर्ग एवं जातिविहीन समाज की रचना की व्यवस्था की है। लेकिन रूढ़िवादी हिन्दू समाज में अभी भी हठीली जातिवादी व्यवस्था अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए जीवित है। इस हाद जाति व्यवस्था ने प्रशासन में विशेष सुविधायें देने के विचार को जन्म दिया है। दलित, शोषित, कमजोर एवं पिछड़े वर्गों में समानता को विकसित करने, उनकी सर्वांगीण उन्नति के लिये, आरक्षण एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है। समानता क्या है? इसका किस अर्थ में प्रयोग होता है, इसको समझना व जानकारी हासिल करना आवश्यक है।

समानता एवं रक्षात्मक विभेदीकरण

"समानता" का अर्थ है कि कानून के समक्ष सभी समान हैं। किसी के साथ कोई भी विभेद व पक्षपात नहीं होना चाहिये। वर्तमान समय में समानता के सिद्धांत के संबंध में लोगों के विचार है कि यह केवल सिद्धांत तक सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि यह एक क्रान्तिकारी राजनैतिक विचार भी होना चाहिए। असमानता सामाजिक आलोचना को जन्म देती है। समानता का सिद्धांत व व्याख्या वर्तमान समय में परिवर्तनशील समाज के हित के अनुकूल होना उचित है।

"समानता" का सिद्धांत अभी कुछ समय पहले तक केवल औपचारिक "समानता" तक ही सीमित था। इससे समाज में व्याप्त सामूहिक असमानता, जो विभेदपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण पैदा हुई है, उसको दूर करने से कोई मतलब नहीं था। दीर्घकाल तक "समानता" का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण इस सूत्र पर आधारित था कि समान के साथ "समानता" का एवं असमान के साथ असमानता का व्यवहार होना

चाहिए। समानता" के सिद्धांत का इससे कोई संबंध नहीं था कि "असमान को दूर करने के कदम उठाए जाएं। समानता का नवीन दृष्टिकोण "परिणाम की समानता से संबंधित है जो कि राज्य द्वारा सुनिश्चित कार्यक्रम एवं कार्यवाही करके असमानता घटाने के प्रयास से किया जा सकता है।

इस संबंध में जांच करने के पूर्व मानव समाज के संदर्भ में "समानता" की जटिलताओं पर विचार करना आवश्यक है। एस.एच.जी. गान्स ने कहा है कि "समानता"" के तीन विकल्प आमतौर पर लिये जाते हैं:-

1- अवसर की समानता,

2- व्यवहार की समानता,

3- परिणाम की समानता ।

संविधान के अनुच्छेद 16 (1) के अंतर्गत दी गई अवसर की समानता वास्तव में' 'इच्छा स्वतंत्रवाद है ताकि समानतावादी सिद्धांत, क्योंकि वह जीवन के क्षेत्र में प्रत्येक को समान स्वतंत्रता प्रदान करती है।" वे लोग जो अपना जीवन असुविधाओं से प्रारंभ करते हैं, ये शायद ही अवसर की समानता का फायदा उठा पाते हैं, क्योंकि जब तक कि वे कुशल और उन्नतिशील तकनीकों में विशेष रूप से श्रेष्ठ न हों, तब तक वे कभी भी अधिक सम्पन्न व्यक्तियों के समान सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं और बहुत से सुविधाहीन व्यक्ति कभी भी समान अवसर प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अवसर की समानता एक सामाजिक सिद्धांत भी है क्योंकि यह "सुविधाहीन लोगों के मार्ग में बहुत से अदृश्य तथा बढ़ी हुई उलझनों को नहीं देखता है। वस्तुतः जब तक पिता से लेकर उनके बच्चों तक का मध्यमवर्गीय घरों में लालन-पालन नहीं किया जायेगा तब तक अधिकांश लोग अवसर की असमानता से ग्रस्त रहेंगे।"

अनुच्छेद 14- कानून के समक्ष समानता

राज्य किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष बराबरी के सिद्धांत को वर्जित नहीं करेगा अथवा भारत वर्ष में कानून है, बराबरी में समान रक्षा को वर्जित नहीं करेगा।

स अनुच्छेद में प्रतिपादित समता के सिद्धांत का अर्थ है "समान लोगों के बीच समानता"। असमान के साथ समान जैसा व्यवहार करना असमानता को स्थिरता प्रदान करता है। जब हम समान रूप से निर्बल तथा बलवान को प्रतियोगिता में उतारते कि अनुमति देते हैं तो हम बलवान के पक्ष में स्वतः पलड़ा भारी कर देते हैं और प्रतियोगिता को हास्यास्पद बना देते हैं जिसमें निर्बल शुरू में असफल रहा है यह दृष्टिकोण "बलवान की जय' 'सुनिश्चित करता है परन्तु हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि' 'बलवान की जय" जंगल का कानून है।

भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक असमानता के संबंध में संविधान निर्मात्री सभा को अपनी अंतिम भाषणों में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने निम्न शब्दों में व्याख्या की थी।"

"सर्वप्रथम हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय समुदाय में दो वस्तुएं लुप्त हो चुकी है। उनमें एक असमानता है। सामाजिक परिवेश में, भारत में श्रेणीबद्ध असमानता का विशेषाधिकार है जिसका अर्थ है, कुछ लोगों का विकास एवं व्यक्तियों की अधोगति व अपमान आर्थिक धरातल में कुछ लोगों के पास अत्यधिक सम्पत्ति है, कुछ लोग गरीबी की सीमा के नीचे जीवन यापन करते हैं। 26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभास के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। राजनीति के क्षेत्र में जहां समानता प्राप्त होगी, वही सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में असमानता मिलेगी। इस विरोधाभास को हमें यथाशीघ्र समाप्त करना चाहिए, वरना जो लोग इस समानता के शिकार है, वह संविधान सभा द्वारा मेहनत से निर्मित एक राजनैतिक ढांचे को तहस नहस कर देंगे।"

यदि यह सिद्धांत इसी प्रकार से कार्य रूप में परिणत किया जाय तो सामाजिक असमानता एवं विषम परिस्थितियों पर गठित समाज में निवास करने वाले पिछड़े वर्गों के लिये कोई फायदा नहीं होगा। यह केवल दार्शनिक सिद्धांत बनकर रह जायगा जब तक किइसको व्यावहारिक स्वरूप प्रदान न किया जाए। इस बिन्दु का स्पष्टीकरण एक घोड़ा दौड़ के उदाहरण से किया जा सकता है। दो घोड़े एक साथ घोड़ा दौड़ में एक ही स्थान से प्रारम्भ होने वाली दौड़ में भाग लेते हैं। एक घोड़ा प्रथम श्रेणी का तथा दूसरा साधारण श्रेणी का घोड़ा है। सिद्धांत रूप में दोनों घोड़ों को दौड़ में भाग लेने का समान अवसर प्रदान किया जाता है, लेकिन व्यवहार रूप में साधारण घोड़ा को समान अवसर प्रदान नहीं किया जाता है, साधारण घोड़ा को विशेष सुविधा देकर यथा सुयोग्य घोड़े को अधिक दूरी से दौड़ने की व्यवस्था करके इस अयोग्यता को क्षतिपूर्ति की जा सकती है। यह कार्यवाही करके, जो प्रतियोगिता अव्यवहारिक थी, उसको व्यवहारिक बनाया जा सकता है। यह विरोधाभास संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क में इसके निर्माण के समय सुनियोजित दमन, जुल्म, और आदतन पिछड़े समुदाय को दासत्व का जीवन व्यतीत करने पर बाध्य कर दिया है। यदि अवसर की समानता का सिद्धांत कठोरता पूर्वक लागू किया जायगा तो इन वर्गों के स्तर को सुधारने के कार्य को नकारना होगा उनको विशेष सहायता की व्यवस्था किए बिना यदि खुली प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये कहा जाता है तो यह किसी भी प्रकार अवसर प्राप्त नहीं कर सकते हैं। जब तक कि वह कुछ निर्धारित समय तक अपने पैरों पर खड़े नहीं होते है। इन्हीं कारणों से संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 16 (4) में पिछड़े वर्गों की विशेष व्यवस्था किया है।

भारत को स्वाधीनता 15 अगस्त 1947 को प्राप्त हुई। संविधान निर्मात्री सभा ने 26 नवम्बर 1949 को भारतीय संविधान को अंतिम रूपेण स्वीकृत किया। प्रस्तावना में भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा औरअवसर की समता प्राप्त करने के लिये तथा उन सब में व्यक्ति को गरिमा और राष्ट्र की

एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने का हमने दृढ़ संकल्प किया गया है। किसी भी भारतीय नागरिक का बहुमूल्य लोकतंत्रीय अधिकार कानून के समक्ष समान होना है। ये अनुच्छेद 15-16 तथा 29 में विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है। ये अनुच्छेद धर्म, वर्ण, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव करने पर रोक लगाते है।

संविधान निर्माता समाज के कमजोर वर्गों की सुरक्षा प्रदान करने की जरूरत के प्रति पूर्ण रूप से सजग थे । अनुच्छेद 15,16 और 29 में सभी नागरिकों को शिक्षा, रोजगार और अन्य सुविधाओं को समान रूप से देने की बात कही गई है। अनुच्छेद 15, 16, एवं 29 के प्रावधानों पर ध्यान देना आवश्यक है, जो निम्नलिखित है:-

अनुच्छेद 15. (1) "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

अनुच्छेद 15 (2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग जन्मस्थान अथवा इसमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक विभेद नहीं करेगा।

(क) दुकानों सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश के अथवा,

(ख) पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य-निधि से घोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिये समर्पित कुओं, तालाबों स्नान घाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व निर्बन्धन अथवा शर्त के अधीन न होगा।

अनुच्छेद 16- (3) किसी बात से संसद को कोई ऐसी विधि बनाने में बाधा न होगी
प्रथम अनुसूची में उल्लेखित किसी राज्य के अथवा उसके राज्य क्षेत्र में किसी स्थानीय या
प्राधिकारी के अधीन किसी प्रकार की नौकरी में या पद पर नियुक्ति के विषय में वैसी नौकरी द
नियुक्ति के पूर्व उस राज्य के अंदर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती हो।

अनुच्छेद 16 (4) "इस अनुच्छेद को किसी बात से राज्य को पिछड़े किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबंध करने में कोई बाधा न होगी।"

अनुच्छेद 15 में खण्ड (4) संविधान में प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 के द्वारा जोड़ा गया है। 26 जनवरी 1950 को जब भारतीय संविधान लागू हुआ उस समय यह अनुच्छेद 15 (4) उसमें शामिल नहीं था। यह संशोधन "जसवन्त कौर बनाम बम्बई राज्य ए.आई. आर. 1952 पृष्ठ 461 मद्रास हाई कोर्ट के फैसले (ए.आई. आर. 1951 मद्रास पृष्ठ 150 तथा इसके विरुद्ध तसंबंधी अपील में सुप्रीम कोर्ट के फैसले (श्रीमती चम्पकम बोराई राजन बनाम मद्रास राज्य ए.आई. आर 1951 सु.को पृष्ठ 266) के प्रभाव

को दूर करने के लिये अधिनियम 1951 द्वारा किया गया इन मुकदमों की विस्तृत विवेचना आगे की जायेगी।

इससे स्पष्ट है कि अनुच्छेद 15 (4) की व्यवस्था को पिछड़े वर्गों के सामाजिक व शैक्षणिक विकास की आवश्यकता को समझ कर संसद ने बहुत विचार-विनिमय करने के बाद हो इनको। बढ़ाया है, और यह महसूस किया गया कि समाज के कमजोर वर्गों को समाज के अन्य सम्पन्न व आगे बढ़े हुए वर्गों के समान खाने हेतु इस तरह की विशेष व्यवस्था के बिना उनका विकास तथा उत्थान नहीं हो सकता ।

अब तक मूल अधिकारों और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के विवाद का प्रश्न संसदीय बहसों तथा न्यायिक उद्‌घोषणाओं जो कि बहुत ही परिचित विषय बन गया है। इस विवाद को (प्रथम संशोधन) विधेयक 1951 पर हुई संसदीय बहसों के दौरान पं. नेहरू द्वारा बड़े ही प्रभावशाली ढंग से उठाया गया था। उन्होंने कहा था. कि....

"राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत किसी लक्ष्य की गतिशीलता के द्योतक है। जबकि मूल अधिकार स्थिरता के द्योतक है ताकि विद्यमान कुछ अधिकारों को बनाए रखा जा सके। दोनो ही ठीक हैं परन्तु कभी और किसी समय ऐसा हो सकता है कि गतिशील ता तथा स्थिरता एक दूसरे के लिए उपयुक्त न हो।

परिणाम यह होता है कि धीरे धीरे किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बनाए गए. गतिशील संविधान के समूचे उद्देश्य में गतिशील तथ्य को अपेक्षा स्थिर तत्व पर थोड़ा अधिक बल दिए जाने के कारण बाधाएं और रुकावटें उत्पन्न होती है और हमें इन्हें दूर करने के लिए कोई तरीके ढूंढना पड़ता है।

यदि वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आम व्यक्ति या वर्ग की असमानता की भी रक्षा करते हैं तो उस नीति निर्देशक सिद्धांत के विवाद में फंस जाते है जिसमें आपके संविधान के अनुसार यह आकांक्षा की गई है कि गर्न शनैः प्रगति हुई है अथवा यदि यो कहा जाय कि इतनी भी नहीं बल्कि यथा संभव थोड़ी तीव्र प्रगति उस राज्य मंत्री में जिस में कम असमानता और अधिक से अधिक समानता हो यदि वैयक्तिक स्वतंत्रता अथवा आजादी के लिए किसी प्रकार की अपील का अर्थ वर्तमान असमानताओं को बनाए रखने के रूप में लिया जायेगा तो आप को कठिनाइयाँ और बढ़ जायेगी। फिर आप स्थित और प्रगतिहीन हो जायेंगे और आप तो परिवर्तन कर सकेंगे और आप एक समानतावादी समाज के आदेश को प्राप्त कर सकेंगे, जब कि मैं समझता हूँ कि हम सबका यहाँ उद्देश्य है।

अनुच्छेद- 38 लोक कल्याण की उन्नति हेतु राज्य सामाजिक व्यवस्था बनायेगा

(1) राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को प्रमाणित कर भरसक कार्यसाधन के रूप में संशोधन और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।

(2) (राज्य विशेष रूप में असमानताओं को न्यून करने का प्रयत्न करेगा और न केवल व्यक्ति के बीच किन्तु विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले या विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों के बीच भी प्रस्थापित सुविधाओं तथा अ ारों में असमानताओं को दूर करने का प्रयत्न करेगा।) (संविधान के चौवालिसवां संशोधन अधिनियम 1978 की धारा 9 द्वारा अनुच्छेद 38 को पुनः संख्यांकित करके अनुच्छेद 38 (1) किया गया और उस प्रकार पुनः संख्याकित किए गए खण्ड के पश्चात खण्ड-2 जोड़ दिया गया) ।

अनुच्छेद 39:-

राज्य द्वारा अनुसूचित अनुस्मरणीय कुछ नीतिः-

(क) समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बढ़ा है कि जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो।

(ख) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार से चले कि जिससे धन और उत्पादन के साधनों का सर्व साधारण के लिए अहितकारी केन्द्रण न हो।

संविधान में निहित मूलाधिकार एवं नीति निर्देशक तत्व के अनुच्छेदों के अलावा पिछड़ा वर्ग से संबंधित निम्न अनुच्छेदों पर भी विचार करना अति आवश्यक है।

अनुच्छेद- 164 (1)

परन्तु उड़ीसा, बिहार तथा मध्य प्रदेश राज्यों में आदिम जातियों के कल्याण के लिए भारसाधक एक मंत्री होगा जो साथ-साथ अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों के कल्याण के अन्य कार्य का भी भार साधक हो सकेगा।

संविधान द्वारा दिए गए संरक्षणों का समुचित रूप से पालन हो सके इसके लिए राष्ट्रपति इन जातियों व वर्गों के लिए संविधान के अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करेगा जो सभी विषयों का अनुसंधान करेगा और उनके संचालन के विषय में समय समय पर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा जिन्हें की संसद के प्रत्येक दल के समक्ष रख पायेगा । संविधान के अनुच्छेद 338 में निम्न प्रावधान है:-

(1) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए एक विशेष पदाधिकारी होग जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) अनु. जातियों और अनु. आदिम जातियों के लिए इस संविधान के अधीन उपबंधित परिव्रणों से संबद्ध सब विषयों का अनुसंधान करना तथा उन परित्रणों पर कार्य होने के संबंध में ऐसे अंतर विधियों में जैसी कि राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा तथा राष्ट्रपति ऐसे सब प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा।

(3) इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रति निर्देश के अन्तर्गत ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निर्देश जिनको कि राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 340 (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लेखित करे तथा अग्ल भारतीय समाज के प्रति निर्देश भी है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(4) 16(4) 16(1) एवं 340 के अध्ययन से स्पष्ट है कि कमजोर, दुर्बल एवं पिछड़े वर्गों में निम्न वर्गीकरण किया गया है:-

(1) अनुसूचित जातियों,

(2) अनुसूचित जन जातियां,

(3) अन्य पिछड़ा वर्ग

अनुच्छेद 340:-

पिछड़े वर्गों की दशाओं के अनुसंधान के लिए आयोग की नियुक्ति

(1) भारत राज्य क्षेत्र में सामाजिक तथा शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशाओं के तथ जिन कठिनाइयों को झेलते है उनके अनुसंधान के लिए तथा उनकी दशा को सुधारने के लि करने योग्य उपायों के बारे में तथा इस प्रयोजन के लिए संघ किसी राज्य द्वारा जो अनुदान दिए जाने चाहिए उनके बारे में सिफारिश करने के लिए राष्ट्रपति आदेश द्वारा ऐसे व्यक्तियों को मिलाकर जैसा वह उचित समझे आयोग बना सकेगा। आयोग नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुकरणीय प्रक्रिया भी परिभाषित होगी।

(2) इस प्रकार नियुक्त आयोग अपने को सौंपे गए विषयों का अनुसंधान करेगा और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा, जिसमें पाये गए तथ्यों का समावेश होगा और जिसमें ऐसी सिफारिशें भी जिन्हें आयोग उचित समझे करेगा।

(3) राष्ट्रपति इस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रतिलिपि उस पर की गई कार्यवाही के संक्षिप्त ज्ञापन सहित संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा।

अनुच्छेद 340 के अन्तर्गत प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग काका कालेलकर की अध्यक्षता में 29 जनवरी 1953 को नियुक्त किया गया था जिसने अपनी रिपोर्ट 30 मार्च 1955 को राष्ट्रपति को दे दी। इसके बाद द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग श्री वी.पी. मंडल को अध्यक्षता में जनवरी 1979 को नियुक्त किया गया। इस

आयोग ने अपनी रिपोर्ट 31 दिसम्बर 1980 को राष्ट्रपति को दी। केन्द्रीय स्तर पर भारत सरकार द्वारा अभी तक उक्त दोनों आयोगों की सिफारिशों के आधार पर कोई कार्यवाही नहीं की गई है।

चूंकि मूल अधिकार न्याय

नीति निर्देशक तत्व न्याय नहीं है। इसलिए प्रारम्भ में यह उपधारणा की गई थी कि मूल अधिकारों को नीति निदेशक तत्वों की उपेक्षा संविधान में उत्तम स्थिति है तथा नीति निर्देशक तत्व मूल अधिकारों की तुलना में गौण थे। इस प्रकार सोचने का ढंग पुराना है और वह अप्रचलित हो गया है। अब इस बात को सर्वव्यापी मान्यता दे दी गई है कि मूल अधिकारों का प्रारम्भिक उद्देश्य नागरिकों का राज्य की अत्याधिक कार्यवाही के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करके उन की राजनैतिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करना है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य राज्य की समुचित कार्यवाही द्वारा सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करना है। मूल अधिकार राजनैतिक गणतन्त्र के आदेश के अग्रसर करने के लिए आशायित है किन्तु उनका तब तक कोई मूल्य नहीं है जब तक कि ये न्यायालयों का अवलम्बन लेकर के प्रवृत्त नहीं किए जा सकते। इसलिए उन्हें प्याप्य बनाया गया है, किन्तु यह बात भी स्पष्ट है कि नीति निर्देशक तत्वों का अत्यधिक महत्व होते हुए भी स्वकृत्या) न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं दिए जा सकते।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संविधानिक उद्देश्य सामाजिक गणतंत्र की स्थापना करता है। जिसमें आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त किया जाता है और सब व्यक्ति समान होते है। तथा सभी को समान अवसर होते हैं। असमानता को, चाहे प्रतिष्ठा सुविधा का अवसर की हो, समाप्त करना है। विशेषाधिकार को समाप्त करना है तथा शोषण को समाप्त करना है, कम सुविधा प्रान्त वंचित और शोषित लोगों को संरक्षण प्रदान करने है और उन्हें सुविधाएं देना है ताकि वे समाज में अपना स्थान बना सके। राज्य की कार्यवाही उन उद्देश्यों के बारे में होना चाहिए। यही संदर्भ में जिसमें अनुच्छेद 16 का निर्वाचन किया जाना चाहिए, अब राज्य की कार्यवाही को अनुच्छेद 16 के अतिक्रमणकारी रूप में चुनौती की जाती है।

""राज्य शब्द की परिभाषा व विस्तार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(4). 16(4), 46 एवं राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के खण्ड-4 के अंतर्गत प्रायः सभी अनुच्छेदों में राज्य शब्द का प्रयोग किया गया है। पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए उक्त अनुच्छेदों के तहत विशेष व्यवस्था करने का अधिकार राज्य को दिया गया है। इसलिए राज्य शब्द की परिभाषा व उसके विस्तार के संबंध में विचार करना आवश्यक है।

संदर्भ

1. शर्मा, जी (2003), मानवाधिकार और कानूनी उपचार, दीप और दीप प्रकाशन प्रा। लिमिटेड, नई दिल्ली।

2. मेहता, पी.एल और वर्मा, एन (1999), भारतीय संविधान के तहत मानवाधिकार, दीप और दीप प्रकाशन प्रा। लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 56।

3. वेल्च, ई. जूनियर, और लेरी, वी.ए. (1990), एशियन पर्सपेक्टिव ऑन ह्यूमन राइट्स, वेस्टर्न प्रेस, ऑक्सफोर्ड।

4. सहगल, बीपीएस (2004), ह्यूमन राइट्स इन इंडिया: प्रॉब्लम्स एंड पर्सपेक्टिव्स, डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 23।

5. लुट्ज़, पी और बर्क (1989), न्यू डायरेक्शन्स इन ह्यूमन राइट्स, यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिलवेनिया प्रेस, फ़िएडेल्फ़िया।

6. बसु, डी.डी. (2007), भारत के संविधान का परिचय, एस.चंद एंड कंपनी, पी.98।

7. दीवान, पी एंड दीवान, पी (1998), ह्यूमन राइट्स एंड द लॉ-यूनिवर्सल एंड इंडियन, डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 23।

8. देसाई ए.आर. (1986), वायलेशन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स इन इंडिया, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे।

9. कोठारी, आर और सेठी, एच (1987), मानव अधिकारों की राजनीति पर विशेष अंक, लोकायन, बुलेटिन, 5/4/5, पृष्ठ 33।

10. बक्सी, यू (1981), द राइट टू बी ह्यूमन। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली।